20
समुदाय के बीच समाज कार्य

* अंजीत कुमार

प्रस्तावना

इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रांति (1750) से शुरू होने वाले आधुनिक युग ने सिर्फ भौतिक जगत् में ही नहीं बल्कि विचारों के जगत् में भी गंभीर बदलावों को देखा। गरीबी, कष्ट, अप्रसन्नता आदि को अपनी नियति मानने की सदियों पुरानी सोच को नकार दिया गया। पूर्व स्थिति जिसमें धर्म किसी को जीवन की स्थितियों के लिए दिलासा देता है, वह अब बदल गया। औद्योगिक क्रान्ति ने उत्पादन व्यवस्था को बिल्कुल बदल दिया, जिसने मान्यताओं तथा विचारों की दुनिया को प्रभावित किया। धीरे-धीरे यह विचार जड़ें जमाने लगा कि मानव स्थितियों को बदला जा सकता है और बेहतर बनाया जा सकता है लेकिन उसके लिए सचेत प्रयास करने की आवश्यकता होती है। प्रयास सिर्फ व्यक्ति अथवा उसके परिवार के स्तर पर ही नहीं बल्कि बहुत कुछ समाज की ओर से भी आवश्यक होते हैं। अठाहरवीं शताब्दी के बाद से विभिन्न ताकतें उभरी हैं -- राष्ट्र-राज्यों की वृद्धि, धीमी गति से कल्याण (वेलफेयर) स्टेट का उभरना तथा राजनीतिक बलों का विकास -- और इन सभी का एक ही उद्देश्य है और वह मानव स्थितियों में सुधार है।

व्यावसायिक समाज कार्य एक नई ताकत है जो समान विचार के साथ उभरी है। इसका आरंभ 1880 के दशक में हुआ था तथा आरंभिक अवस्थाओं में इसे परोपकार की धारणा से चलाया जा रहा था जिससे बड़े स्तर पर शहरीकरण तथा औद्योगीकरण कर रहे पश्चिमी समाज की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके। गोरे ने व्यावसायिक समाज कार्य के इतिहास को ब्रिटेन के संक्रमण काल के समय से जोड़ा है, जब कृषि आधारित समुदाय टूट रहे थे तथा मध्य वर्ग उभर रहा था। इस काल में बड़े पैमाने पर जनसंख्या का विस्थापन हुआ

---

* डॉ. अंजीत कुमार, एम एस एस इंस्टिट्यूट ऑफ सोशल वर्क, नागपुर

था तथा समाज कार्य की शुरुआत अकेले व्यक्तियों, निराश्रितों, अकेली महिलाओं, कम मज़दूरी पाने वाले तथा बेरोज़गार व्यक्तियों की भीषण गरीबी में सहायता के लिए हुई थी। औद्योगीकरण की आरंभिक अवस्था में न तो राज्य और न ही नियोक्ता 'कर्मचारियों' की नौकरी की सुरक्षा, रक्षा और कल्याण की जिम्मेदारी लेते थे। (1997: 442, 443)

समाज कार्य परोपकार की भावना के साथ शुरू हुआ था, और उसका विचार यह था कि अधिक भाग्यशाली लोग बदहाल व्यक्तियों के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को निभा रहे थे। यह इस विचार पर आधारित था कि सहायता इतनी कम हो कि लोग सक्रिय बने रहे तथा साथ ही भूखमरी तथा मौत से भी बच सके। समय के साथ-साथ कुछ विचार रूपांतरित हो गए।

सामाजिक व्यवस्था के रूप में समुदाय

समुदाय की संकल्पना

शब्द "समुदाय" जैसा कि रेमण्ड विलियम्स (1976) ने कहा हैः अंग्रेज़ी भाषा में चौदहवीं शताब्दी से है जब इसका अर्थ संबंधों अथवा भावनाओं का समुदाय था। शब्द "समुदाय" को सामान्य रूप से समाज विज्ञान में विशेष रूप से समाज शास्त्र में प्रयोग किया जाता है जबकि यह समाज कार्य के व्यवसाय के व्यवहार का क्षेत्र है। एक संकलन के अनुसार इसकी 94 परिभाषाएँ हैं जिनमें से प्रत्येक एक अथवा अन्य गुण में दूसरे से भिन्न है। दो प्रसिद्ध समाज शास्त्री (मेकाइवर तथा पेज) ने इस संकल्पना की चार विशेषताओं की पहचान की हैः सामान्य जीवन का कोई भी क्षेत्र; जो किसी न किसी रूप में दूसरे क्षेत्रों से भिन्न हों; जिसकी अपनी विशिष्ट विशेषताएँ हों; तथा उस सीमाक्षेत्र की अपनी पहचान हो।

- समुदाय की संकल्पना के क्षेत्रीय अथवा भौगोलिक निहितार्थ हैं।
- इनकी सामाजिक-आर्थिक विशेषताएँ समान होती हैं।
- इनके बीच में अपनेपन तथा साहचर्य की भावना होती है।

आइए, अब हम इनका अधिक विस्तार से परीक्षण करते हैं।

i) व्यक्तियों के किसी समूह को 'समुदाय' कहने का अर्थ है कि वे एक ही क्षेत्र में रहते हैं तथा एक ही भौगोलिक क्षेत्र के निवासी हैं। इसका सबसे प्रचलित उदाहरण, जो हमारे दिमाग में आता है वह है गाँव समान क्षेत्र का निवासी होना ही समुदाय का सबसे महत्वपूर्ण तत्व है।

ii) महज निवासी होना ही पर्याप्त नहीं है। उनकी कुछ समान सामाजिक-आर्थिक विशेषताएँ भी होनी चाहिए। उदाहरण के लिए गाँव को समुदाय का एक अच्छा उदाहरण सिर्फ समान निवास के कारण ही नहीं बल्कि इसलिए भी कहते हैं क्योंकि ग्राम वासियों की भाषा समान होती है, उनके सांस्कृतिक गुण समान होते हैं, वे एक ही कुँए व विद्यालय का उपयोग करते हैं तथा एक ही धार्मिक स्थल पर जाते हैं। भोजन के प्रमुख उत्पाद, जैसे चावल अथवा गेहूँ आदि का उपयोग भी सभी सदस्यों में एक जैसा ही होता है। अधिकांश गाँववासी कृषि व्यवस्था से जुड़े रहते हैं। उनके त्यौहार तथा वैवाहिक समारोहों में भी जाति तथा आर्थिक अंतर के बावजूद भी समानता पाई जाती है।

iii) पहली दो विशेषताएँ ही तीसरी विशेषता को जन्म देती है। समान निवास तथा समान सामाजिक-आर्थिक प्रकार के जीवन से ही। लोग एक दूसरे को पहचानने लगते हैं तथा अपनेपन की भावना विकसित होती है। ये अपनेपन की भावना उनके एक समुदाय के सदस्य होने को बताती है तथा ग़ैर-समुदाय के सदस्यों को बाहरी व्यक्ति के रूप में देखा जाता है।

व्यवस्था के रूप में समुदाय

व्यवस्था शब्द का प्रयोग पूर्णता के लिए किया जाता है जिसमें अनेक भाग क्रियात्मक रूप से एक दूसरे से जुड़े रहते हैं। क्रियात्मक का अर्थ है सार्थक भूमिका का प्रदर्शन। उदाहरण के लिए मानव शरीर इस रूप में एक व्यवस्था है क्योंकि इसमें अनेक भाग होते हैं। हाथ, पैर, आँखें, नाक आदि तथा प्रत्येक भाग एक उपयोगी भूमिका निभाता है तथा संपूर्ण मानव शरीर की कुल क्रियात्मकता में योगदान देता है। यदि किसी एक भाग को भी हटा दिया जाए तो मानव शरीर अपूर्ण हो जाता है और इस तरह से जहाँ 'संपूर्णता' खत्म हो जाती है वहीं वह भाग जो पैर अथवा हाथ कुछ भी हो सकता है, वह मुरझा कर नष्ट हो जाता है।

शब्दकोश (चैम्बर्स ट्वेन्टीअथ सेन्चुरी डिक्शनरी, 1981) में इस शब्द को "किसी भी ऐसी चीज के रूप में परिभाषित किया गया है जो ऐसे भागों से बना हो जिन्हें एक साथ मिलाकर अथवा समायोजित करके नियमित तथा पूर्ण इकाई को बताया जा सके" अथवा "चीजों का समूह जिसे पूर्ण इकाई के रूप में माना जाता हो"।

समुदाय को एक व्यवस्था के रूप में समझने के लिए हम इसे तीन उप-व्यवस्थाों में विभाजित कर सकते हैं:

- आर्थिक उप-व्यवस्था
- राजनीतिक उप-व्यवस्था
- सामाजिक उप-व्यवस्था

i) आर्थिक उप-व्यवस्था

समुदाय के आर्थिक उप-व्यवस्था को समझने के लिए हमें वहाँ के लोगों के प्रमुख व्यवसाय; उन्हें मिलने वाली मज़दूरी; भुगतान के तरीके; घर, भूमि, बचत आदि के रूप में लोगों की संपत्ति; तथा खर्च के तरीकों का निरीक्षण करना होगा। यदि हम गाँव के आर्थिक उप-व्यवस्था को समझना चाहते हैं तो गाँव के प्राथमिक तथा सहायक व्यवसायों को समझना आवश्यक है; वहाँ भुगतान साप्ताहिक रूप से होता है अथवा मासिक रूप से; भूमि का स्वामी कौन होता है तथा उसमें से कितनी भूमि की सिंचाई होती है; कितने परिवार भूमिहीन हैं? आमदनी का कितना भाग भोजन, घर, कपड़ों, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि पर खर्च होता है। इन प्रश्नों के उत्तर हमें गाँव के आर्थिक उप-व्यवस्था को समझने में सहायक होंगे। इसी अभ्यास को शहरी समुदाय के साथ भी किया जा सकता है -- इनमें से कुछ प्रश्नों को शहरी अर्थव्यवस्था की प्रासंगिकता के अनुसार रूपांतरित करना होगा।

उदाहरण: एक आर्थिक उप-व्यवस्था के रूप में गाँव

किसी भारतीय गाँव का प्रमुख व्यवसाय कृषि तथा मज़दूरी ही होगी। उसका एक छोटा भाग मज़दूरों को रखकर अपनी स्वयं की भूमि का स्वामी होगा जबकि अधिकांश व्यक्ति अन्य व्यक्तियों की भूमि पर मज़दूरों के रूप में काम कर रहे

होंगे। भूमि का स्वामित्व, विशेष रूप से सिंचाई वाली भूमि का स्वामित्व, जनसंख्या के एक छोटे से भाग तक ही सीमित होता है। विभिन्न क्षेत्रों के विभिन्न अधिक उप व्यवस्था होते हैं लेकिन सामान्य रूप से देखा जाए तो मज़दूरों को साप्ताहिक आधार पर भुगतान किया जाता है। अनेक गाँवों में पुराने व्यवसाय जैसे धोबी, सुनार, लुहार आदि खत्म हो गए हैं तथा नए व्यवसाय विकसित हो गए हैं। विद्यालय व्यवस्था तथा पंचायती राज संस्थाओं के विस्तार के साथ ही अनेक वेतन वाली नौकरियाँ उत्पन्न हो गई है। दूध का व्यवसाय, कृषि उत्पादों को आसपास के शहरों में बेचने का व्यवसाय, आदि ने भी नए कार्यों का सृजन किया है।

ii) राजनीतिक उप-व्यवस्था

यहाँ राजनीति शब्द का प्रयोग शक्ति की संकल्पना के लिए किया गया है। हालाँकि शक्ति एक अमूर्त संकल्पना है पर ये वास्तविक है तथा इसका उपयोग समाज के कुछ भागों के हित के लिए किया जाता है। समाज के वे भाग जिनका हित होता है वे शक्ति संपन्न होते हैं तथा जिनको छोड़ दिया जाता है वे शक्तिहीन होते हैं। समुदाय में सामुदायिक शक्ति की संरचना को समझने के लिए निम्नलिखित तीन प्रश्नों के उत्तर दिए जाने चाहिए -- समुदाय में शक्ति किसके पास है? शक्ति किस पर आधारित है? इस शक्ति का उपयोग कैसे किया जा रहा है? इन तीनों प्रश्नों के उत्तर हमें उस समुदाय में शक्ति की संरचना का विवरण दे देंगे। चलिए हम एक एक करके इन प्रश्नों के उत्तर देने की कोशिश करें।

- **समुदाय में शक्ति किसके पास है?**

  किसी समुदाय में शक्तिशाली व्यक्तियों की पहचान करने का एक आसान तरीका वहाँ के औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों प्रकार के नेताओं की पहचान करना है। औपचारिक नेताओं से अभिप्राय उन व्यक्तियों से हैं जो स्थानीय संगठनों में औपचारिक पदों पर हैं। ये संगठन धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक अथवा सामाजिक संगठन हो सकते हैं। इनकी तुलना में अनौपचारिक नेताओं की पहचान करना कठिन है क्योंकि ऐसे व्यक्ति बिना किसी पद के ही शक्ति का प्रयोग करते हैं। अनौपचारिक नेताओं की पहचान करने का एक आसान तरीका समुदाय के अनेक लोगों से ऐसे कुछ व्यक्तियों के नाम पूछना है जो सहायक तथा प्रभावशाली हैं। वे नाम, जिन्हें ज्यादातर

व्यक्ति बताएँ और जो किसी औपचारिक पद पर न हों, उन्हें समुदाय का अनौपचारिक नेता माना जा सकता है।

- **शक्ति किस पर आधारित है?**

दूसरा प्रश्न शक्ति के आधार से संबंधित है। नेतृत्व के कुछ आधार होते हैं, जिसके अनेक कारक हो सकते हैं -- धन, घर, भूमि आदि के रूप में आर्थिक संपत्ति, जाति सदस्यता, शिक्षा, जानकारी, संपर्क तथा नेटवर्किंग, मेलजोल, परिवार की प्रतिष्ठा, महत्वपूर्ण राजनीतिक दलों की सदस्यता, तथा व्यवसाय प्रतिष्ठान। सामान्य रूप से इन कारकों के संयोजन से नेतृत्व के उभरने में सहायता मिलती है।

- **शक्ति का उपयोग कैसे किया जा रहा है?**

तीसरा प्रश्न शक्ति के उपयोग से संबंधित है। शक्ति कभी भी यथापूर्व/एक जैसी व्यवस्था नहीं हो सकती है। शक्ति सदैव विभिन्न रूपों तथा तरीकों से अपनी ताकत बढ़ाती रहती है। राजनीतिक शक्ति आर्थिक शक्ति सुदृढ़ करती है जबकि आर्थिक शक्ति फिर राजनीतिक शक्ति को सुदृढ़ करती है। राजनीतिक शक्ति संपन्न व्यक्ति, संपत्ति, व्यवसाय, ठेके आदि प्राप्त करके अपने आर्थिक आधार को मज़बूत बनाता है, जबकि आर्थिक रूप से संपन्न व्यक्ति अपनी स्थिति को मज़बूत करने के लिए राजनीतिक संपर्क विकसित करता है अथवा अपने लोगों को महत्वपूर्ण पद दिलवाता है।

एक राजनीतिक उपव्यवस्था के रूप में गाँव

गाँव में औपचारिक नेतृत्व सरपंच/प्रधान तथा ग्राम पंचायत के अन्य चुने गए सदस्यों का होता है। दुग्ध सहकारी संघ, कृषि ऋण सहकारी समिति, धार्मिक संगठन, सामाजिक संगठन, महिला मंडल आदि के पदाधिकारी गाँव के अन्य औपचारिक नेता हो सकते हैं। गाँव के भू-स्वामी वर्ग के सदस्य अनौपचारिक नेता हो सकते हैं। सामान्य रूप से भूमि, राजनीतिक दलों तक पहुँच, शिक्षा, जानकारी, जाति आदि शक्ति के आधार बनते हैं। शक्ति का प्रयोग परिवार के किसी सदस्य अथवा किसी समूह विशेष के सदस्य को महत्वपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित करने, राशन की दुकान चलाने या मिट्टी के तेल के वितरण के लिए लाइसेंस

प्राप्त करने, सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालय तथा छात्रावासों को चलाने, वेतन वाली नौकरियाँ प्राप्त करने आदि के लिए किया जाता है।

सामाजिक उप-व्यवस्था

सभी ग़ैर-आर्थिक तथा ग़ैर-राजनीतिक मसले सामाजिक उप-व्यवस्था शीर्षक के तहत् आते हैं। विवाह तथा परिवार; जाति प्रथा; धार्मिक मान्यताओं; मूल्यों तथा रीतियों के संदर्भ में सामाजिक संरचना के कुछ पहलू हैं जिनका अध्ययन किया जाता है। त्यौहार, खानपान की आदतें, आभूषण आदि कुछ अन्य पहलू हो सकते हैं।

भारतीय संदर्भ में समुदाय

गेन्ग्रेड ने भारतीय संदर्भ में समुदाय की संकल्पना को समझने की आवश्यकता पर प्रकाश डाला जहाँ इसे अक्सर 'जाति', 'बोली' तथा 'धार्मिक' समूहों के रूप में बताया जाता है। इन सामाजिक समूहों की सदस्यता जाति पर आधारित होती है तथा यह भारतीय समाज को क्षैतिज़ तथा उदग्र दोनों रूपों से विभाजित करती है। जाति तथा धार्मिक श्रेणियों में विवाह तथा सगोत्रता के बंधन की जड़ें बहुत मज़बूत हैं तथा व्यक्ति की प्राथमिक पहचान को बनाती हैं। इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति की जिम्मेदारियाँ तथा दायित्व इन श्रेणियों के प्रति अधिक तथा समाज के प्रति कम हो जाते हैं। इस भावना से समुदाय को समझने की प्रकृति से व्यक्ति की सोच संकुचित तथा सीमित हो जाती है और यह प्रत्येक व्यक्ति के साथ समान व्यवहार के समाज कार्य दर्शन के विपरीत होती है। समाज कार्यकर्ता को जाति तथा धर्म से ऊपर उठकर व्यवहार करने की सोच को विकसित करना चाहिए। समस्या "बड़े समूहों के हित में इन समूहों की संकुचित निष्ठा की इस तरीके से तोड़ने की है जिससे प्रत्येक दूसरे से शक्ति ले सके तथा पारस्परिक रूप से विशिष्ट रहने के स्थान पर एक दूसरे के पूरक बन जाएँ।" (1971: 11, 12)

ग्रामीण समुदाय के साथ समाज कार्य

ग्रामीण समुदाय की विशेषताएँ

- अधिकांश गाँवों में अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित होती है। ग्रामीण समुदाय का जीवन चक्र कृषि की विशेष प्रकृति पर केन्द्रित होता है। भारतीय कृषि देश के अधिकांश भागों में मानसून/बारिश पर निर्भर करती है, जिससे उसमें

बहुत अधिक अनिश्चितता पाई जाती है। मज़दूरों के पास वर्ष भर के लिए कार्य नहीं होता है जबकि किसान भी अच्छी फसल के लिए दुविधा में रहते हैं। यह अनिश्चितता लोगों के जीवन में दिखाई देती है -- खर्च करने और बचत की लंबी अवधि की योजना बनाना मुश्किल हो जाता है, जिससे बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य तथा अन्य लंबी अवधि के खर्च प्रभावित होते हैं।

- प्रमुख व्यवसाय खेती तथा मज़दूरी होते हैं। मानसून के आने पर, खेतों की जुताई और बुआई के समय तथा फसलों की कटाई के समय मज़दूरों की माँग बढ़ जाती है जिससे उनकी मज़दूरी भी अधिक हो जाती है। काम कम हो जाने पर सिर्फ मज़दूरी ही कम नहीं हो जाती है बल्कि काम की तलाश में मज़दूरों के परिवार वहाँ से अन्यत्र भी चले जाते हैं। किसान जो फसलों के लिए बाज़ार मूल्य पर निर्भर होते हैं उन्हें भाव ऊँचा होने पर लाभ मिल जाता है और इसके विपरीत भाव गिरने पर उन्हें नुकसान हो सकता है।
- शहरी समुदाय की तुलना में, गाँव की जनसंख्या बहुत कम होती है। काम के हिसाब से तथा निवास के हिसाब से भी लोगों में कम गतिशीलता होती है। ग्रामीण समुदाय में काम पैतृक प्रवृत्ति के होते हैं -- एक किसान का बेटा खेती करता है जबकि भूमिहीन परिवारों के बच्चे मज़दूरी का कार्य करते हैं। जब कोई व्यक्ति शहर में आता है तो उसके लिए व्यावसायिक परिवर्तन आसान होता है। ग्रामीण समुदाय के सदस्य समान सांस्कृतिक तरीकों जैसे समान भाषा, धर्म, भोजन प्रवृत्तियों आदि को अपनाते हैं। कुल मिलाकर गाँवों में बहुत अधिक एकरूपता होती है।
- गाँव की सामाजिक संरचना जाति प्रथा तथा पारम्परिक परिवार संरचना पर आधारित होती है। इनके प्राथमिक बंधन महत्वपूर्ण होते हैं और अपनेपन की प्रबल भावना होती है। किसी व्यक्ति की भूमिका तथा समझ स्थानीय समाज में उसकी स्थिति के परिणाम के रूप में उभरती है। समूह के आदर्शों तथा बोधात्मक मूल्यों की मौलिक मान्यता होती है। गाँव में समान जाति के सदस्यों में एक दूसरे के निकट रहने की प्रवृत्ति होती है।

ग्रामीण समुदाय में संस्थागत् संरचनाएँ

संस्थागत् संरचनाओं का अर्थ नीतियों, कार्यक्रमों, वित्त तथा प्रशासनिक वर्गीकरण वाले संगठनों से है। तथा पिछले पचास वर्षों में इनमें से अनेक विभिन्न कार्यों

को करने के लिए विकसित हुए हैं। शक्तिशाली जातियाँ तथा आर्थिक श्रेणियाँ इन संगठनों को नियंत्रित करती हैं। ये संगठन विभिन्न तरीकों से स्थानीय समुदाय के जीवन को प्रभावित करते हैं तथा ये समझना ज़रूरी है कि वे कैसे कार्य करते हैं। ये तीन प्रकार के हो सकते हैं:

क) **सरकारी संगठन**

राज्य सरकार के अनेक विभाग जैसे राजस्व, वन, सिंचाई, स्वास्थ्य, सामान्य प्रशासन, लोक निर्माण विभाग (Public Works Department) आदि स्थानीय समुदाय के जीवन को प्रभावित करते हैं। सरकार इन पर सीधा नियंत्रण रखती है तथा भर्ती, कार्य स्थितियों, वेतन के भुगतान, कार्य वितरण, निरीक्षण आदि से संबंधित सभी निर्णय लेती है। इसके अतिरिक्त राज्य बिजली बोर्ड तथा पुलिस विभाग भी कार्यरत रहते हैं।

ख) **ग़ैर-सरकारी संगठन**

स्थानीय समुदाय में अनेक औपचारिक तथा अनौपचारिक संगठन होते हैं। ये विभिन्न प्रकार के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि हो सकते हैं। जो समुदाय में विभिन्न कार्यों को करते हैं। अधिकांश गाँवों में एक या दो महिला मंडल तथा स्थानीय धार्मिक स्थल के कामों की व्यवस्था के लिए समिति हो सकती है। राजनीतिक दलों के सदस्य अन्य संगठनों के सदस्यों की अपेक्षा अधिक सक्रिय होते हैं और उन्हें अनेक समाज कार्य के मुद्दों के लिए लामबंद किया जा सकता है। ग़ैर-सरकारी संगठनों की प्रमुख विशेषता यह है कि इन पर सरकार का प्रत्यक्ष नियंत्रण नहीं होता है।

ग) **वैधानिक तथा जन संगठन**

पिछले पचास वर्षों में अनेक वैधानिक संगठनों जैसे पंचायती राज संस्था तथा सहकारी संगठनों का ऋण, कृषि संसाधन तथा विपणन, कृषि निवेशों (inputs) की आपूर्ति आदि के क्षेत्रों में विकास हुआ है। अनेक ग्रामीण क्षेत्रों में दुग्ध सहकारी संघ बन गए हैं। ये जन संस्थाएँ हैं जो राजनीतिक छवि के साथ स्थानीय हितों को दर्शाती है। चूँकि नेतृत्व चुनाव लड़ने के बाद मिलता है इसलिए, इन संस्थाओं की स्थानीय जड़ें काफी गहरी होती है। इनमें सबसे विस्तृत संगठन पंचायती संस्था है जो जिला (जिला परिषद्), खंड (पंचायत समिति) तथा गाँव (ग्राम पंचायत तथा ग्राम सभा) के स्तर पर कार्य करती है। प्रत्येक राज्य ने पंचायती

राज को लागू करने के लिए अपने निजी कानून बनाए हैं। ग्रामीण बैंकिग के क्षेत्र में कृषि एवं ग्रामीण विकास पर राष्ट्रीय बैंक (National Bank for Agriculture and Rural Development) की स्थापना नाबार्ड (NABARD) अधिनियम, 1981 के तहत् की गई थीं, जो कि केन्द्रीय कानून है।

ग्रामीण समुदाय में समस्याएँ

ग्रामीण समुदाय में समस्याओं को निम्नलिखित प्रकार से समझा जा सकता है:

क) व्यक्तिगत स्तर पर समस्याएँ

विभिन्न प्रकार के पारिवारिक विवाद इस श्रेणी में आते हैं। सबसे सामान्य विवाद पति-पत्नी के झगड़े अथवा परिवार के सदस्यों की दो पीढ़ियों में विवाद के होते हैं। इन झगड़ों की प्रकृति मूल्य–संघर्ष की अधिक होती है जो एक या दो व्यक्तियों पर केन्द्रित होती हैं, जिसमें मानव व्यक्तित्व की भूमिका महत्वपूर्ण होती हैं।

ख) समूहों के स्तर पर समस्याएँ

समूह के स्तर पर समस्याओं की प्रकृति सामाजिक-आर्थिक स्थितियों की अधिक होती है। यह वृद्धजनों, अकेले माता-पिता, सीमांत किसानों, भूमिहीन परिवारों, अशिक्षितों, विद्यालय से निकाले गए बच्चों, किशोर वय के बच्चों आदि की समस्याओं से जुड़ी हो सकती हैं।

ग) समुदाय के स्तर पर समस्याएँ

इनमें प्रभावित होने वाले समूह की अपेक्षा जनसंख्या के वर्ग का महत्व अधिक होता है। यह समुदाय का बड़ा भाग अथवा पूर्ण समुदाय हो सकता है। इस स्तर पर ग्रामीण समुदाय तथा स्थानीय संस्थागत् संरचनाओं की कार्य प्रणाली को प्रभावित करने वाली नीतियों को लागू किया जाता है। मुद्दों के संदर्भ में यह मद्यपान, सफाई, स्वास्थ्य, हिंसा, पर्यावरण के क्षय, पेयजल, भूमि तथा वनों से संबंधित मुद्दे, मज़दूरी की समस्या, ढाँचागत समस्याएँ, शोषण तथा उत्पीड़न की समस्या, गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों की समस्याएँ आदि हो सकती हैं।

ग्राम पंचायत तथा ग्राम सभा कार्य करने के महत्वपूर्ण कार्यक्षेत्र हो सकते हैं। ग्राम सभा को पंचायत राज व्यवस्था का आधार माना जाता है और सिद्धान्त रूप में इसके पास ग्राम स्तर पर अधिकतम अधिकार होते हैं। सभी वयस्क ग्रामवासी ग्रामसभा को बनाते हैं और उनसे वर्ष में चार बार मिलकर ग्राम पंचायत द्वारा किए गए कार्य की समीक्षा करने ग्राम पंचायत द्वारा क्रियान्वित की जाने वाली नई योजनाओं को बनाने की उम्मीद की जाती है। व्यवहार में ऐसा कभी नहीं होता है तथा एक छोटे समूह का ही ग्राम पंचायत तथा ग्राम सभा दोनों पर नियंत्रण तथा अधिकार होता है।

समाज कार्य हस्तक्षेप के तरीकों की संकल्पना करना

जिन समस्याओं की पहचान की गई हो उन्हें 'मुद्दे' (issue) के प्रारूप में विकसित किया जाना चाहिए। इस प्रक्रिया को व्यवहार में लाने के लिए निम्नलिखित कदम उठाए जाने चाहिए:

- उस समस्या की पहचान करना जिसपर कार्य करना है
- लक्षित समूह का निर्णय करना -- मात्रात्मक विस्तार में।
- उन उद्देश्यों के लिए कार्य करना जिनमें मात्रात्मक तथा गुणात्मक विस्तार दोनों हैं।
- सहयोगात्मक कार्य के लिए स्थानीय संस्थागत् संरचनाओं की पहचान करना।
- कार्यवाही के तरीके का निर्णय करना।
- किए गए कार्य के मूल्यांकन के लिए कुछ गुणात्मक तथा मात्रात्मक सूचकों को सूचीबद्ध करना।

एक बार ये कदम उठा लिए जाएँ तो हस्तक्षेप के उपायों की विस्तृत रूपरेखा तैयार हो जाती है। अब उन विशिष्ट तरीकों का निर्णय किया जाना चाहिए जिसके लिए प्रस्तावित कार्यवाही का निम्नलिखित तरीका सहायक हो सकता है:

- कौन से विशेष कदम उठाए जाने चाहिए?
- प्रस्तावित उपायों के लिए किन संसाधनों की आवश्यकता होगी?
- संसाधनों को कहाँ से प्राप्त किया जाएगा?
- लिए जाने वाले सहयोग की प्रकृति के लिए संस्थागत् इकाई के अधिकारी के साथ बातचीत।

शहरी समुदाय के साथ समाज कार्य

शहरी समुदाय की विशेषताएँ

- शहरी समुदाय का व्यावसायिक पैटर्न ग़ैर-कृषि व्यवसायों द्वारा नियंत्रित होगा। उसके कार्य के घंटे नियमित होंगे तथा धन मज़दूरी अथवा वेतन के रूप में मिलेगा। जनसंख्या का एक भाग औपचारिक अर्थव्यवस्था से संबद्ध होगा जहाँ नियम और कानून प्रभावी होंगे तथा वहाँ आर्थिक सुरक्षा अधिक होगी। वहाँ सामाजिक सुरक्षा के उपायों के लिए भी वृद्धावस्था पेंशन, बचत योजना आदि के रूप में प्रावधान होंगे तथा ऋण लेने की सुविधा भी होगी।

- निम्न-आय वाले परिवार शहरी अनौपचारिक अर्थव्यवस्था से बंधे होते हैं जहाँ आर्थिक असुरक्षा अधिक होती है तथा नियमों और कानूनों के लिए कम स्थान होता है। सामाजिक सुरक्षा के उपायों के प्रावधान शहरी अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में बहुत कम होते हैं। सामान्यतः निम्न आय वाले परिवार झुग्गियों में रहते हैं जो दो प्रकार की होती हैं। ऐसी झुग्गी झोपड़ियाँ जिन्हें नगरपालिका के अधिकारियों द्वारा मान्यता मिली होती है उन्हें सिर्फ नगरीय सुविधाएँ ही नहीं मिलती हैं बल्कि वहाँ के निवासी अपने जमीन/मकान के मालिक बन जाते हैं तथा करदाता भी बन जाते हैं। लेकिन ग़ैर-मान्यता प्राप्त झुग्गियों की दोहरी असमर्थता होती है। क्योंकि वे नगरपालिका के अधिकारियों द्वारा मान्य नहीं होती है इसलिए उन्हें नगरीय सुविधाएँ नहीं मिल पाती हैं और उन्हें किसी भी समय अपने घरों/स्थानों से हटाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त उन मकानों के दाम भी नहीं बढ़ते हैं और वे संपत्ति नहीं बन पाती हैं।

- शहरी समुदाय का एक भाग प्रवासी होता है। छोटे शहरों में आसपास के गाँवों से प्रवास होता है जबकि बड़े शहरों तथा औद्योगिक स्थानों पर प्रवासी दूर के स्थानों से भी आ सकते हैं वे अपने साथ अपनी संस्कृति भी ले आते हैं और संभवतः भिन्न भाषाई समूहों, जाति समूहों अथवा धर्म के होते हैं।

- शहरी समुदाय की जनसंख्या अधिक होती है और उसमें बड़े पैमाने पर विषमता भी होती है।

- इनकी सामाजिक संरचना में द्वितीयक बंधनों का अधिक प्रभाव दिखाई देता है और इनमें एकल परिवार का प्रभाव भी अधिक होता है। शहरी समुदाय में भौगोलिक तथा व्यावसायिक गतिशीलता ग्रामीण समुदाय की अपेक्षा अधिक होती है।

- विभिन्न स्रोतों के प्रभाव के कारण शहरी समुदाय का सदस्य अपने मूल समूह के आदर्शों तथा नैतिक मूल्यों को पूरी तरह से माने यह जरूरी नहीं है तथा उसका अपने समूह के साथ बहुत अधिक जुड़ाव होगा यह भी जरूरी नहीं है।

शहरी समुदाय में संस्थागत् संरचनाएँ

शहरी समुदाय में ग्रामीण समुदाय की तुलना में विभिन्न प्रकार के संगठन दिखाई पड़ते हैं। यह विविधता कुछ तो शहरी समुदाय की विषयरूपी प्रकृति के कारण होती है और कुछ इसलिए होती हैं क्योंकि ज्यादातर शहरी क्षेत्र उद्योगों तथा स्थानीय प्रशासन के केन्द्र होते हैं। वे स्थानीय समुदाय के जीवन से विभिन्न रूपों में टकराते हैं और यह समझना ज़रूरी है कि वे कैसे काम करते हैं। ये तीन प्रकार के हो सकते हैं:

क) **सरकारी संस्थाएँ**

अनेक सरकारी विभाग अपने कार्य करते हैं जो शहरी समुदाय में महत्वपूर्ण हैं। राजस्व विभाग, सामान्य प्रशासन विभाग, शहरी योजना प्राधिकरण, राशन विभाग, उद्योग विभाग आदि ऐसे ही विभाग हैं।

ख) ग़ैर-सरकारी संस्थाएँ

शहरी समुदाय में अनेक ग़ैर-सरकारी संगठन होते हैं। शहरी क्षेत्रों में प्राथमिक स्तर से लेकर उच्चतम स्तर तक की शैक्षिक संस्थाएँ देखी जा सकती हैं। चैम्बर्स ऑफ कॉमर्स, व्यापारी संघ, धार्मिक संस्थाएँ, सामाजिक संगठन, छात्र संगठन, महिला संगठन आदि यहाँ के कुछ अन्य सामान्य संगठन हैं। व्यावसायिक संस्थाएँ जैसे उद्योग तथा बैंक शहरी व्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। राजनीतिक दल तथा समाज कार्य संगठन शहरी समुदाय के कुछ अन्य प्रमुख संगठन हैं।

ग) वैधानिक तथा जन संस्थाएँ

सबसे महत्वपूर्ण जन संस्था नगरपालिका होती है। सहकारिता के क्षेत्र में अनेक संगठन पाए जाते हैं -- जिनमें सबसे महत्वपूर्ण सहकारी आवास संस्थाएँ तथा ऋण सहकारी संस्थाएँ हैं। अनेक राज्यों में, शहर की योज़ना का कार्य वैधानिक संस्थाओं की जिम्मेदारी होती है।

शहरी समुदाय में समस्याएँ

क) व्यक्तिगत स्तर पर समस्याएँ

विभिन्न प्रकार के पारिवारिक विवाद इस श्रेणी में आते हैं। इनमें सबसे सामान्य पति-पत्नी के बीच के विवाद अथवा परिवार के सदस्यों की दो पीढ़ियों के बीच के विवाद हैं। इन विवादों की प्रकृति मूल्यों के विवाद की अधिक होती है और इसमें एक या दो व्यक्तियों पर ही ध्यान केन्द्रित होता है जिसमें मानव व्यक्तित्व अहम् भूमिका निभाता है। बच्चों की समस्याएँ एक अलग कार्यक्षेत्र हैं। पीढ़ियों के बीच के झगड़ों के शहरी परिवारों में होने की अधिक संभावना रहती है।

ख) समूह के स्तर पर समस्याएँ

समूह के स्तर पर समस्याएँ सामाजिक-आर्थिक स्थितियों की प्रकृति की अधिक होती है। यह वृद्धजनों, एकल माता-पिता, बेरोज़गार, भिखारी, विद्यालय से निकाले गए विस्थापित अनाथ, जुर्म के शिकार किशोर अपराधी, एड्स

पीड़ित समूह, मानसिक रूप से पीड़ित रोगी, अपंग आदि की समस्याएँ हो सकती हैं।

ग) समुदाय के स्तर पर समस्याएँ

यहाँ तय करने वाला तत्व प्रभावित समूह के स्थान पर जनसंख्या का एक भाग है। यह समुदाय का एक बड़ा भाग अथवा पूर्ण समुदाय हो सकता है। मुद्दों के मामले में यह मद्यपान, सफाई, स्वास्थ्य, हिंसा, पर्यावरणीय निम्नीकरण, पेयजल, मज़दूरी की समस्या, ढाँचागत् समस्याएँ, शोषण तथा अत्याचार की समस्या आदि हो सकती है। अन्य मुद्दे गरीबी तथा बेरोज़गारी, गरीबी रेखा से नीचे (बी.पी.एल.) सूची में गरीब व्यक्तियों के नाम दर्ज करना आदि हो सकते हैं।

समाज कार्य हस्तक्षेप के उपायों की संकल्पना करना

पहचान की गई समस्याओं को 'मुद्दे' (issue) के प्रारूप में विकसित किया जाना चाहिए। इस प्रक्रिया को पूरा करने के लिए निम्नलिखित कदम उठाए जाने चाहिएः

- उस समस्या की पहचान करना जिस पर कार्य करना है।
- लक्ष्यित समूह का निर्णय करना - मात्रात्मक विस्तार में
- उन उद्देश्यों के लिए कार्य करना जिनमें मात्रात्मक तथा गुणात्मक विस्तार दोनों हों।
- सहयोगात्मक कार्य के लिए स्थानीय संस्थागत् संरचनाओं की पहचान करना
- कार्यवाही के तरीके का निर्णय करना
- किए गए कार्य के मूल्यांकन के लिए कुछ गुणात्मक तथा मात्रात्मक सूचकों की सूचीबद्ध करना।

एक बार ये कदम उठा लिए जाएँ तो हस्तक्षेप के उपायों की विस्तृत रूपरेखा तैयार हो जाती है। अब उन विशिष्ट तरीकों का निर्णय किया जाना चाहिए जिसके लिए प्रस्तावित कार्यवाही का निम्नलिखित तरीका सहायक हो सकता है।

- कौन से विशेष कदम उठाए जाने चाहिए?
- प्रस्तावित उपायों के लिए किन संसाधनों की आवश्यकता होगी?
- संसाधनों को कहाँ से प्राप्त किया जाएगा?
- लिए जाने वाले सहयोग की प्रकृति के लिए संस्थागत इकाई के अधिकारी के साथ बातचीत।

जनजातीय समुदाय के साथ समाज कार्य

जनजातीय समुदाय की विशेषताएँ

- जनजाति को परिभाषित करने की समस्या ने प्रशासकों, मानव विज्ञानियों तथा समाज विज्ञानियों को चुनौती दी है, जिन सभी ने इसकी अलग परिभाषाएँ दी हैं। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (International Labour Organisation – ILO) ने अपनी 1953 की रिपोर्ट में यह बताया था कि "ऐसे कोई मानक नहीं हो सकते हैं जो संपूर्ण विश्व में सभी आदिवासी या देशज समूहों पर लागू हो सके" (देवगांवकर, 1994:15) हालाँकि कोई भी समूह जिसमें निम्नलिखित विशेषताएँ हो उसे जनजाति माना जा सकता है:

  - एक निश्चित आवास तथा क्षेत्र
  - एक एकीकृत सामाजिक संगठन जो प्राथमिक रूप से रक्त संबंधों (समोद्भवी) पर आधारित हों।
  - सांस्कृतिक एकरूपता
  - समान देवी देवता तथा समान पूर्वज
  - समान भाषा/ बोली तथा समान लोककथाएँ

- भारतीय संविधान के अनुच्छेद 366 के तहत् जनजातीय समुदाय को अनुसूचित जनजाति घोषित किया गया है और इसमें 14 राज्यों की 212 जनजातियों को सम्मिलित किया गया है। अनुच्छेद 342 (i) के द्वारा भारत

के राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया है कि वह किसी भी क्षेत्र की किसी भी जनजाति/जनजातीय समूह को 'अनुसूचित जनजाति' के रूप में घोषित कर दें। इस प्रकार की घोषणा पर विशेष रूप से उल्लेखित की गई वह जनजाति अनुसूचित जनजाति की सूची में पाँचवी तालिका (fifth schedule) में सम्मिलित कर दी जाती है और इस तरह से वह सभी संवैधानिक सुरक्षण तथा रक्षा की हकदार बन जाती है।

- भारत के संविधान में जनजातीय जनसंख्या की सुरक्षा तथा कल्याण के लिए अनेक प्रावधान हैं। अनुच्छेद 46 में उल्लेख है कि राज्य अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण तथा सभी प्रकार के सामाजिक-आर्थिक शोषण से उनकी सुरक्षा के लिए प्रतिबद्ध हैं। अनुच्छेद 275 भारत सरकार द्वारा कुछ राज्यों को जनजातीय कल्याण के लिए विशेष अनुदान प्रदान करता है तथा छठवीं तालिका का एक भाग बनाता है। अनुच्छेद 164 बिहार, मध्य प्रदेश तथा उड़ीसा के राज्यों में जनजातीय कल्याण के लिए कार्यवाहक मंत्री की नियुक्ति को आवश्यक बनाता है। अनुच्छेद 244 अनुसूचित क्षेत्रों तथा अनुसूचित जनजातियों के प्रशासन तथा नियंत्रण के लिए पाँचवीं तालिका के प्रावधानों को लागू करना संभव बनाता है।

- हमारे देश में झारखंड, छत्तीसगढ़ तथा उड़ीसा में अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या सबसे अधिक है उसके बाद महाराष्ट्र तथा राजस्थान हैं। 1991 की जनगणना के अनुसार, अनुसूचित जनजाति देश की कुल जनसंख्या का 8.01 प्रतिशत भाग है।

- वेरियर एल्विन के अनुसार जनजातीय लोगों को चार श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। पहले जो अब तक वनों में रह रहे हैं तथा प्राचीन जीवन शैली को अपनाते हैं। दूसरे, जो ग्रामीण क्षेत्रों में रह रहे हैं और कृषि पर निर्भर हैं। तीसरे, जो शहरी क्षेत्रों में आ गए हैं तथा उन्होंने आधुनिक औद्योगिक व्यवसायों को अपना लिया है। चौथे, जो पूरी तरह से मुख्यधारा में घुलमिल कर उसी का एक भाग बन गए हैं। प्रसिद्ध भारतीय समाजशास्त्री घूर्ये की वर्गीकरण की योजना भिन्न है। पहली श्रेणी उन लोगों की है जिन्होंने संघर्ष किया है तथा भारतीय समाज में उच्च पदवी प्राप्त की है जैसे राजगोंड।

दूसरे जो आंशिक रूप से हिन्दू हो गए हैं और तीसरे जो वनों में रहते हैं तथा बाहरी संस्कृति का विरोध करते हैं।

- आकार के हिसाब से जनजातीय समुदाय छोटे हैं। पारंपरिक रूप से जनजातीय लोग भूमि के स्वामी थे और भूमिहीन हो जाने की समस्या के बावजूद इनका एक बड़ा वर्ग अब भी भू-स्वामी हैं।
- पारम्परिक रूप से जनजातीय लोग भूमि सहित संपत्ति के सामूहिक स्वामित्व की भावना को मानते थे और अपनी अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति वन से करते थे। आज भी जनजातीय लोग अन्य समुदाय के सदस्यों की तुलना में बाज़ार की संरचना के साथ कम समाकलित होते हैं।
- जनजातीय समुदाय में महिलाओं का स्तर (ओहदा) बेहतर है और उन्हें निर्णय लेने के अधिक अधिकार हैं। यह इस तथ्य से पता चलता है कि प्राचीन समय में आज के मुख्यधारा समाज में दिए जाने वाले 'दहेज' के स्थान पर 'दुल्हन को धन' देना पड़ता था।
- पूर्व ब्रिटिश काल में जनजातीय लोगों की स्वायत्त संस्कृति थी और ये प्रकृति प्रेमी समुदाय थे। ब्रिटिश काल के शुरू होने के बाद से जनजातीय समुदाय भारतीय समाज की मुख्यधारा में मिलने लगा लेकिन यह समाज के निचले तबके में मिल रहा था। यह प्रक्रिया परसंस्कृतिग्रहण (accultration) कहलाती है जो 'एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी जाति की संपूर्ण जीवनशैली किसी दूसरी संस्कृति के प्रभाव में आकर पूरी तरह से बदल जाती है। यह संस्कृति परिवर्तन धीमी अथवा तेज़ गति से हो सकता है और समय के साथ साथ इसका दूसरी संस्कृति में आंशिक अथवा पूर्ण विलय भी हो सकता है। प्रत्येक जनजातीय समूह का भिन्न स्तर भी हो सकता है। (देवगाँवकर 1994:16)।

जनजातीय समाज में संस्थागत् संरचना

पारम्परिक संस्थाएँ जैसे घोटुल जो युवाओं के समाजीकरण में सहायक रही हैं, वे कमज़ोर हो रही है तथा आधुनिक संरचनाएँ उभर रहीं हैं। पंचायती राज प्रणाली, सहकारी संस्थाएँ, शैक्षिक संस्थाएँ तथा बाज़ार की संरचनाएँ अब धीरे-धीरे जनजातीय क्षेत्रों में उभर रही हैं। अनेक सरकारी विभाग, जिनमें से कुछ

जनजातीय मामलों के लिए विशेषीकृत है, जनजातीय समुदाय के बीच कार्य कर रहे हैं। अनेक जनजातीय क्षेत्रों में समाज कार्य संगठन जिनमें से अधिकतर ग़ैर-सरकारी संगठन हैं उन्होंने शिक्षा तथा स्वास्थ्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

जनजातीय समाज की समस्याएँ

भूमि हस्तांतरणः जनजातीय लोगों का बड़ा वर्ग ऐसा है जिसके पास कृषि योग्य जमीन है ब्रिटिश काल से ही व्यापारी, पूँजीपति तथा मेहनती किसान जनजातीय क्षेत्रों में आ गए थे और उन्होंने बेईमानी से जनजातीय जमीनों को हथिया लिया था। अतः जनजातीय लोग जो पारंपरिक रूप से किसान थे वे खेतीहर मज़दूर बन गए और बहुत सी जगह तो वे अपनी ही जमीन में बंधुआ मज़दूर बन गए। बाद में जनजातीय व्यक्ति तथा ग़ैर-जनजातीय व्यक्ति के बीच भूमि के सौदे रोकने के लिए कानून पास हुआ जिसने बहुत हद तक इस प्रक्रिया को रोका।

वन तथा जनजातियाँः सदियों से जनजातियाँ प्रकृति के साथ सहवासी रही हैं तथा ईंधन, चारे तथा जीवन की अन्य आवश्यकताओं के लिए प्रकृति पर निर्भर रही हैं। छोटे वन उत्पादों को एकत्रित करके वे उन्हें भ्रमणकारी व्यापारियों को अथवा आसपास के बाज़ार में बेचकर बाज़ार से आवश्यक वस्तुएँ खरीद लेते हैं। ब्रिटिश शासन काल से ही ये पारम्परिक अधिकार जो निस्तार अधिकार कहलाते थे, मान्य थे और इन्हें सरकार द्वारा भी मान्यता प्राप्त थी। वन का जनजातियों द्वारा उपयोग पूर्णतः घरेलू उपभोग के लिए था तथा वन क्षेत्र संरक्षित था।

ब्रिटिश काल में वनों के व्यावसायिक शोषण का आरंभ हुआ, जो स्वव्यवस्थाता प्राप्ति के बाद के काल में भी जारी रहा। इस प्रक्रिया से वनों पर जनजातियों के अधिकारों में ही कटौती नहीं हुई बल्कि बेईमान ठेकेदारों ने प्रशासनिक अधिकारियों के साथ मिलकर वनों के बड़े क्षेत्रों को काट दिया। जनजातियों की वन तक पहुँच कम हो गई तथा उन्हें सीमित उपयोग का अधिकार दिया गया जिसके लिए स्थानीय वन अधिकारियों को घूस देकर तथा उनसे बेइज्जत होकर उन्हें अनुमति लेनी पड़ती थी। वर्तमान में वन नीति में कुछ परिवर्तन किया गया है तथा वन के प्रबंधन को स्थानीय समुदाय को भरोसे में लेकर संयुक्त वानिकी प्रबंधन योजनाओं (Joint Forestry Management Schemes) को चलाया गया है।

विस्थापनः एक प्रमुख समस्या जो जनजातीय समुदाय झेल रहा है, खासतौर पर सुदूर क्षेत्रों में रहने वाले जनजातीय लोग, वह विस्थापन की समस्या है। स्वव्यवस्थाता प्राप्ति के बाद के काल में अनेक परियोजनाएँ स्थापित की गई जिन्होंने जनजातीय लोगों की जमीन तथा उन वनों को ले लिया जहाँ वे रह रहे थे। 1980 के दशक से शुरू हुए सामाजिक आंदोलनों ने इस समस्या पर ध्यान दिया और अब किसी भी बड़ी परियोजना को लागू करते समय पुनर्वास के पैकेज को सम्मिलित किया जाता है। एक उचित पुनर्वास पैकेज की कठिनाई तथा उनके उचित कार्यान्वयन की समस्याओं के अतिरिक्त एक बड़ी समस्या यह है कि जहाँ जनजातीय व्यक्ति अपनी भूमि खो देता है और उसे मुआवज़ा दिया जाता है। उसके पास उस मुआवज़े को सुरक्षित तरीके से निवेश करने अथवा उतनी ही बड़ी जमीन खरीदने में समस्याएँ आती हैं। जब सभी जनजातीय समुदाय को वहाँ से हटा दिया जाएगा तो हानि जीवन के तरीके में होगी जिसकी पूर्ति कोई भी मुआवज़ा नहीं कर पाएगा।

गरीबी और बेरोज़गारीः जनजातीय लोगों का जीने का तरीका 'उपयोग' तथा भरण पोषण पर आधारित था। संपत्ति का स्वामित्व, उत्पादन बढ़ाना, बचत तथा बाज़ार की ताकतों के साथ व्यवहार करना उनके लिए अपेक्षाकृत अनजाना था। शहरीकरण तथा औद्योगीकरण के विकास, आधुनिक शिक्षा के उद्‌भव तथा नए कौशलों ने जनजातीय समुदाय को हानि पहुँचाई है। जब पुरानी दुनिया का विघटन हो रहा था तब वे नए युग की आवश्यकताओं के अनुरूप स्वयं को ढालने में साधनहीन थे। जनजातीय समुदाय में बहुत अधिक गरीबी तथा बेरोज़गारी है। पिछले दो दशकों में जनजातीय लोगों का एक छोटा भाग उभरा है जो शिक्षित है तथा जिन्हें अच्छी नौकरियाँ मिल गई हैं। पिछले कुछ दशकों की सामाजिक-आर्थिक नीतियों के कारण विद्यालयों, छात्रावासों की स्थापना हुई है, छात्रवृत्तियाँ दी जाने लगी हैं, विकासात्मक परियोजनाएँ शुरू हुई हैं, और जनजातीय लोगों के एक छोटे वर्ग ने इन कार्यक्रमों का लाभ उठाया है – वे शिक्षित हैं और उन्हें सरकारी क्षेत्रों में स्थायी नौकरियाँ मिल गई हैं। लेकिन ये बदलाव बड़ी संख्या में जनजातीय लोगों के जीवन में नहीं आए हैं।

अधिकांश गरीब जनजातीय लोग या तो भूमिहीन हैं अथवा साधारण किसान हैं। सिंचाई के कम विस्तार के कारण भारत में खेती मानसून पर निर्भर करती है। एक ही फसल उगाने से जनजातीय किसान के पास कुछ बचत की गुंजाइश नहीं

रहती है और साल में छह महीने भूमिहीन जनजातीय लोगों के पास कोई काम नहीं रहता है।

भाषा तथा पहचानः अधिकांश जनजातीय लोग पूरे देश में फैले हुए हैं और ज्यादातर जगहों पर उनकी संख्या बहुत ज्यादा/बहुसंख्यक नहीं है। उन्हें हिन्दी तथा अंग्रेजी के अतिरिक्त उस राज्य की भाषा को भी सीखना पड़ता है जिसमें वे रहते हैं और इस प्रक्रिया में जनजातीय भाषा तथा लिपियाँ खत्म हो रही हैं। उनकी भाषा के खत्म होने के साथ ही उनकी जीवनशैली भी खत्म हो रही है और उनके लिए पहचान का खतरा पैदा हो गया है। कुछ स्थानों पर बाहरी ताकतों द्वारा शोषण के विरुद्ध तथा जनजातीय पहचान के दावे के लिए जनजातीय आंदोलन हुए हैं। इन प्रक्रियाओं का एक नतीजा बिहार में से झारखंड राज्य का बनना है। उत्तर-पूर्वी राज्यों के अतिरिक्त झारखंड एकमात्र ऐसा राज्य है जहाँ जनजातीय लोगों की संख्या बहुत अधिक (बहुसंख्यक) है।

समाज कार्य हस्तक्षेप के उपायों की संकल्पना करना

जैसा कि पहले के भागों में बताया गया है कि जनजातियों की समस्याएँ विभिन्न सामाजिक-आर्थिक प्रकृतियों की हो सकती हैं। कार्य का लक्ष्य इन समुदाय की पहचान करना तथा निम्नलिखित संदर्भ में प्राथमिकताओं का निर्णय करना होना चाहिएः

सारांश

पारम्परिक रूप से समुदाय वह रचना थी जिसमें व्यक्ति रहते थे, अपनी संस्कृति के बारे में तथा अन्य लोगों की संस्कृति के बारे में सीखते थे। आधुनिक जगत् जो औद्योगीकरण तथा शहरीकरण पर आधारित है वह समुदाय की संकल्पना का क्षय कर रहा है। भारत में समुदाय शब्द का अर्थ जाति, धर्म अथवा भाषा पर आधारित समूह भी होता है। इस अध्याय में हमने समाज कार्य के व्यवहार के क्षेत्र का निरीक्षण किया है, और वह ग्रामीण, शहरी तथा जनजातीय समुदाय के संदर्भ में 'समुदाय के साथ समाज कार्य' है।

हमने समुदाय की संकल्पना की कुछ परिभाषाएँ दी हैं तथा समुदाय की महत्वपूर्ण विशेषताओं को विस्तार से समझाया है। समुदाय के विभिन्न विस्तारों की समझ

विकसित करने के लिए इसके तीन उप-व्यवस्थायों की रचना को प्रस्तुत किया गया है। आर्थिक उप-व्यवस्था व्यवसाय, आमदनी आदि के बारे में बताता है जबकि राजनीतिक उप-व्यवस्था समुदाय में शक्ति (अधिकार) के वितरण की चर्चा करता है। सामाजिक उप-व्यवस्था समुदाय के सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन का अध्ययन करता है। तीनों उपव्यवस्था एक दूसरे से परस्पर संबंधित हैं। राजनीतिक मसलों की जड़े आर्थिक मुद्दों में होती है और आर्थिक मामलों की राजनीतिक में। सभी मसलों के सामाजिक संदर्भ होते हैं।

परिभाषाएँ, विशेषताएँ तथा उप-व्यवस्था विद्यार्थियों को समुदाय की संकल्पनात्मक प्रकृति को समझने में और उन्हें अगली अवस्था के लिए तैयार करने में समर्थ बनाते हैं जो समाज कार्य हस्तक्षेप की कार्य पद्धति है। हस्तक्षेप को शहरी, ग्रामीण तथा जनजातीय समुदाय के संदर्भ में बताया गया है। हस्तक्षेप के उपायों से पूर्व सूचनाएँ एकत्रित की जानी चाहिए तथा प्रत्येक व्यवस्था की एक समझ विकसित करनी चाहिए। ये करने के लिए हम उन प्रमुख विशेषताओं, संस्थागत् संरचनाओं तथा समस्याओं का निरीक्षण करते हैं जिनका समुदाय सामना करते हैं। इन तीनों पहलुओं की समझ हमें तीसरी अवस्था में पहुँचने में सहायक होती हैं, यानि हस्तक्षेप के प्रभावी तथा प्रासंगिक उपायों की रचना करना। अध्याय का अंत उन लक्ष्यों की प्रकृति के बारे में संक्षिप्त चर्चा से किया गया है जिन्हें प्राप्त किया जाना चाहिए।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

एबरक्रोम्बी, एन., हिल, एस. तथा टर्नर, बी. एस. (1984), *द पैंग्विन डिक्शनरी ऑफ सोशलॉजी*, एलन लेन, लंदन।

चौधरी, डी.पी. (1979), *सोशल वेलफेयर एडमिनिस्ट्रेशन*, आत्माराम एंड संस, दिल्ली।

दत्ता, आर. (1971), *वेल्यूज इन मॉडल्स ऑफ माडर्नाइज़ेशन*, विकास पब्लिकेशंस, दिल्ली।

देवगांवकार, एस. जी. (1994), *ट्राइबल एडमिनिस्ट्रेशन एंड डेवलपमेंट विद एथ्नोग्राफिक प्रोफाइल्स ऑफ सेलेक्टेड ट्राइब्स,* कंसेप्ट पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

गेंग्रेड, के. डी. (1971), *कम्युनिटी ऑर्गनाइजेशन इन इंडिया,* पापुलर प्रकाशन, बम्बई।

गोरे. एम. एस. (1997), "ए हिस्टोरिकल पर्सपेक्टिव ऑफ सोशल वर्क प्रोफेशन", *द इंडियन जर्नल ऑफ सोशल वर्क,* खंड 58, अंक 3, जुलाई।

हेबसर, आर. के. (सं.) (1996), *सोशल इंटरवेन्शन फॉर जस्टिस,* टी. आई. एस. एस. मुम्बई।

कोसाम्बी, डी.डी. (1995), *इंट्रोडक्शन टु द स्टडी ऑफ इंडियन हिस्ट्री,* पापुलर बुक डिपो, बम्बई।

मेयर्स, एच. जे. (1972), "सोशल वर्क", *इंटरनेशनल एनसाइक्लोपीडिया ऑफ द सोशल साइन्सेज,* खंड 13, द मैकमिलन कंपनी तथा द फ्री प्रैस, लंदन।

मैथ्यू, जी. (1991), *इंट्रोडक्शन टु सोशल केसवर्क,* टी. आई. एस. एस., मुम्बई।

पानवाल्कर, वी.जी. (1987), "सोशल वर्क इन रूरल सैटिंग", *एनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल वर्क इन इंडिया,* समाज कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, खंड सं. III